महाराष्ट्र में वीरशैव संप्रदाय का प्रचार

डॉ० अंबादास धर्मा केत

सहायक प्रोफेसर, इतिहास और प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्वशास्त्र विभाग शिरूर शिक्षण प्रसारक मंडल के चांदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय, शिरूर, जिला- पुणे, महाराष्ट्र

भाषिक सीमाएँ जितनी व्यापक होती है उतनीही अस्पष्ट होती हैं। आज कर्नाटक में बेलगाम, बीजापुर, गुलबर्गा, बीदर, धारवाड़ आदि भागों में जिस तरह से मराठी बोली जाती है, उसी तरह से दक्षिण महाराष्ट्र के सोलापुर, सांगली, कोल्हापुर, मराठवाड़ा क्षेत्र के लातूर, उदगीर, नांदेड जैसे कई भागों में कन्नड़ भाषा बोली जाती है। हालाँकि पहाड़, नदियाँ या अन्य भौगोलिक विशेषताएँ किसी क्षेत्र की भौगोलिक सीमा निर्धारित कर सकती है, लेकिन भाषा, संस्कृति और परंपराओं को सीमित नहीं कर सकती हैं। प्राचीन और पूर्व मध्ययुगीन काल में दक्षिण महाराष्ट्र और मराठवाड़ा का सीमावर्ती क्षेत्र सांस्कृतिक रूप से उत्तरी कर्नाटक का हिस्सा था। आज भी महाराष्ट्र के सांगली, कोल्हापुर, सोलापुर, उस्मानाबाद, लातूर और नांदेड जिले कन्नड़ भाषा और संस्कृति से काफी प्रभावित हैं। जैसा कि यादवकालीन महाराष्ट्र के लेखक मु. ग. पानसे लिखते हैं कि, "आज महाराष्ट्र और कर्नाटक के बीच की सीमा निर्धारित करना असंभव है क्योंकि कर्नाटक के सम्राटों ने सदियों से महाराष्ट्र पर शासन किया है"। दरसल, महाराष्ट्र और कर्नाटक दोनों का राजनीतिक इतिहास लगभग एक जैसा है। प्राचीन काल में सातवाहन, चालुक्य, कदंब, यादव, शिलाहार, कल्याणी के चालुक्य और कलचुरी आदि राजवंश के शासकों का इन दोनों क्षेत्रों पर अमल था। मध्ययुग मे बहमनी, विजयनगर और मराठा राजवंशों ने दोनों क्षेत्रों पर शासन किया। भारतवर्ष के कई महत्वपूर्ण तीर्थ स्थल महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा पर स्थित है। इन दोनों प्रदेश की इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक निकटता के कारण, बारहवी शताब्दी ईस्वी में संत बसवेश्वर के तत्वावधान में कर्नाटक में उभरे वीरशैव संप्रदाय का महाराष्ट्र में प्रचार-प्रसार हुआ। इस शोध निबंध में महाराष्ट्र में वीरशैव संप्रदाय के प्रसार पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

वीरशैव संप्रदाय के प्रसार की शुरुआत: प्राचीन काल से ही महाराष्ट्र की भूमि शैव संप्रदाय के प्रसार के लिए अनुकूल थी। भगवान शिव के बारह ज्योतिर्लिंगों में से त्र्यंबकेश्वर, घृष्णेश्वर, नागनाथ, वैद्यनाथ और भीमाशंकर आदि पाँच क्षेत्र महाराष्ट्र में स्थित हैं। कई प्राचीन मराठी कवियों द्वारा अपने साहित्य में किए गए संदर्भों के आधार से आलंदी (पुणे जिले) एक प्रसिद्ध प्राचीन शिवपीठ के रूप में जाना जाता है। डॉ. रा. चि ढेरे के अनुसार शिव उपासना की यह पार्श्वभूमि वीरशैवों के लिए अनुकूल रही। जहाँ तक महाराष्ट्र में वीरशैव संप्रदाय के प्रसार का सवाल है, ऐसा कहा जाता है कि इस संप्रदाय का प्रसार बारहवीं शताब्दी ईस्वी में यादव राज वंश के समय से शुरू हुआ था लेकिन उपलब्ध ऐतिहासिक स्त्रोत के अनुसार वीरशैव संप्रदाय महाराष्ट्र में संत बसवेश्वर के समय से पहले भी मौजूद दिखाई देता है। विदर्भ के बुलढाणा जिले के साखरखेर्डा गांव में स्थित वीरशैव आचार्य पलसिद्ध महाराज के मठ की परंपरा करीब एक हजार साल पुरानी है। इस मठ द्वार पर उत्कीर्ण लेख के अनुसार पलसिद्ध महाराज की समाधि का काल शक 980 यानि इ.स. 1058 ऐसा है।[1] इस पलसिद्ध महाराज की परंपरा आज भी जारी है। इससे स्पष्ट होता है कि संत बसवेश्वर से पहले भी ग्यारहवीं शताब्दी ई. में पलसिद्ध महाराज ने महाराष्ट्र में वीरशैव विचारधारा का प्रसार किया था। साखरखेर्डा के साथ-साथ महाराष्ट्र में पराडा, माजलगाव, उदगीर, मानूर, निलंगा, राजुर,परतुर, वैराग आदि मठों की परंपरा भी एक हजार साल पुरानी है।[2] आष्टी, उदगीर, शोलापुर आदि वीरशैव मठों में ताड़पत्रों पर लिखित संस्कृत और कन्नड़ भाषा के शिवागम, विवेक चिंतामणि आदि प्राचीन वीरशैव ग्रंथ आज भी उपलब्ध हैं।

वीरशैवों को यादव राजसत्ता का आश्रय: देवगिरी के यादव शासकों ने जिस तरह मराठी भाषा, धर्म और संस्कृति के विकास में योगदान दिया उसी तरह कन्नड भाषा और संस्कृति के विकास में उनका शासनकाल अनुकूल रहा। कर्नाटक के अधिकांश प्रदेश में यादव राजसत्ता का विस्तार हुआ था। इस बात के पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है कि यादव वंश के शासकों द्वारा वीरशैव संप्रदाय को राजाश्रय दिया गया था। यादव काल में ही वीरशैव संप्रदाय ने कर्नाटक और महाराष्ट्र के अन्य हिस्सों में अपनी पहचान बनाई थी। वीरशैवों के 'अनुभवशिखामणि ग्रंथ' में दी गई एक कथा के अनुसार यादव राजा पांचवे भील्लम वीरशैव संप्रदायी कहे जाते है। कर्नाटक के अर्जुनवाड़ा (जिला बेलगाव) में मिले 1260 ई. स. शिलालेख के अनुसार कृष्णदेव यादव के शासनकाल में उनके दो मंत्री चाउंडा शेट्टी और नागरस्स द्वारा संत बसवेश्वर के वंश के किसी हाल बसवेश्वर नाम के शिवशरण को जंगमों के भोजन व्यवस्था के लिए एक कविलासपुर नामक गांव दानस्वरूप दिया गया था।[3] वीरशैव संप्रदाय के कुछ अनुयायियों ने यादवों के प्रशासन में उच्च स्थान प्राप्त किया था। महादेवराज यादव के महाप्रधान देवराज और रामदेवराय यादव के सेनापति चाउण्डरस वीरशैव संप्रदाय के अनुयायी थे। चाउण्डरस की मृत्यु के बाद लिंगायत या वीरशैव परम्परा के अनुसार उनका अन्त्यसंस्कार किया गया था। धारवाड़ जिले के सगुर शिलालेख से पता चलता है कि महाप्रधान देवराज ने सोन्नलिगे यानि आधुनिक शोलापुर के कपिलासिद्ध मल्लिकार्जुन क्षेत्र का दर्शन किया था और इस मंदिर के योगक्षेम के लिए कर्नाटक के बासुर विभाग के सगुर या चगुर नामक एक कर मुक्त गांव दान दिया था। साथ ही मंदिर के सेवक वर्गों के लिए भी भूमिदान किया था।[4] इस प्रमुख सन्दर्भ के अलावा कर्नाटक और महाराष्ट्र के विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुए यादव राजवंश से जुड़े अभिलेख इस बात की पुष्टि करते है कि यादव राजाओं ने वीरशैव संप्रदाय को राजाश्रय दिया था।

संत बसवेश्वर का मंगलवेढा में वास्तव्य: कर्नाटक और महाराष्ट्र की भौगोलिक निकटता के कारण दोनों प्रदेश की राजसत्ताओं का परस्पर भूमि में विस्तार, दोनों क्षेत्रों में धर्मों का वैचारिक आदान-प्रदान के कारन यादवकालीन महाराष्ट्र के सांस्कृतिक इतिहास में वीरशैव संपर्क के बहुत सारे प्रमाण मिलते हैं। वीरशैव संप्रदाय के प्रवर्तक संत बसवेश्वर का मंगलवेढा में वास्तव्य इस काल की सबसे खास बात है। डॉ. पी. बी देसाई के नए शोध के अनुसार, बिज्जल कलचुरी राजवंश की राजधानी मंगलवेढा (जिला. सोलापुर) थी।[7] इसी मंगलवेढा में रहकर संत बसवेश्वर ने बिज्जल के प्रशासन में अनेक पदों पर काम किया था, चूंकि मंगलवेढा कलचुरी परिवार की राजधानी का पारंपरिक स्थान होने के कारन बिज्जल के साथ बसवेश्वर का निवास भी मंगलवेढा ही था। ...कि वर्ष 1156 में, बिज्जल ने कल्याणी के चालुक्यों की संप्रभु शक्ति को उखाड़ फेंककर कलचुरी की स्वतंत्रता घोषित की और अपनी राजधानी को मंगलवेढा से कल्याण में स्थानांतरित किया लेकिन इसके पहले संत बसवेश्वर ने कुडलसंगम या कप्पडी संगम में अपनी शिक्षा पूरी की और ध्यान करने के बाद उन्होंने मंगलवेढा आकर बिज्जल प्रशासन में जिम्मेदारी के कई पदों पर काम किया था। मंगलवेढा में ही बसवेश्वर की कोषागार विभाग में लिपिक के पद से लेकर कोषाध्यक्ष पद तक प्रगति हुई। इसी वास्तव्य काल में बसवेश्वर ने अपने वीरशैव संप्रदाय को बढ़ावा देने के लिए पहला कदम उठाया। अपने ...काल के दौरान, बसवेश्वर एक तरफ राजनीति या प्रशासन में उच्च पदों को प्राप्त कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर, वह शिव के प्रति अपनी सचेत भक्ति का दृढ़ीकरण कर रहे थे। इस बारे में डॉ. पी. बी. देसाई लिखते हैं की, (Basavesvara lived at Mangalvedha up to 1153 A-D- When he rose to a supreme position in the court of Bijjala and made preparations for his social and religious movement] which matured and bore fruit at Kalyana)[8] इसी दौरान दैनिक राज्य के मामलों को अंजाम देने के साथ-साथ अपने फुरसत समय में बसवेश्वर ने छूत-अछूत जनजातियों के बीच सामंजस्य और सलोखा बनाना, चातुर्वर्ण्य के प्रभाव को कम करना आदि दिशा में प्रयास शुरु किए। उन्होंने हर स्त्री-पुरुष को बिना आलस्य के अपना व्यवसाय ईमानदारी से करने का संदेश देना शुरू किया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसी मंगलवेढा की भूमि में ही बसवेश्वर ने "व्यक्ति ने अपने शरीर पर विश्व और शिव के प्रतीक इष्टलिंग को धारण करना चाहिए और किसी अन्य देवता की पूजा किए बिना शिव की पूजा करनी चाहिए" यह उपदेश देना शुरू किया। ...यह एक कारण है कि संत बसवेश्वर को मंगलवेढा और उसकी निकटतम प्रदेश में बड़ी संख्या में अनुयायी मिले। डॉ. एम. चिदानंद मूर्ति ने मंगलवेढा वास्तव्य के कारन बसवेश्वर के जीवन में हुए परिवर्तनों का समुचित शब्दों में वर्णन किया है। वे कहते हैं, '' कप्पडी संगम या कुडलसंगम पर बसव केवल एक व्यक्ति था लेकिन मंगलवेढा आने के बाद वह लोगों का हिस्सा बने। एक सामाजिक कार्यकर्ता के साथ-साथ एक धार्मिक-सामाजिक आंदोलन और क्रांति का प्रतीक भी बने। बसवेश्वर की आध्यात्मिक साधना और सामाजिक कार्य साथ-साथ चलते थे''।[9]

रेवणसिद्ध और मंगलवेढा: संत बसवेश्वर के अलावा उनके एक वरिष्ठ समकालीन वीरशैव सिद्धपुरुष रेवणसिद्ध का भी मंगलवेढा से गहरा संबंध और ... समय तक मंगलवेढा में ही उनका वास्तव्य भी रहा। यह वही रेवणसिद्ध थे जिन्होंने सोलापुर सोन्नलिगे के प्रसिद्ध शिवशरण सिद्धरामेश्वर की ...भविष्यवाणी की थी। आज भी दक्षिण महाराष्ट्र के साथ कर्नाटक का क्षेत्र रेवणसिद्ध की यादों से भरा हुआ है। माचनूर, शोलापुर, रटकल, रेणावी आदि स्थानों पर रेवणसिद्धेश्वर के स्मारक मंदिर खड़े हैं। रेवणसिद्धेश्वर का बड़ा शिष्य परिवार उस्मानाबाद, शोलापुर परिसर में था।[10] ऐसा माना जाता है कि रेवणसिद्धेश्वर के पुत्र और प्रसिद्ध वीरशैव संत रुद्रमुनि का जन्म मंगलवेढा के पास सिद्धकेरे गांव में हुआ था। डॉ. पी. बी. देसाई ने कहा है कि माचनूर ...लपुत्र मल्लिकार्जुन की राजधानी थी। इन प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि रेवणसिद्धेश्वर के संपर्क के कारण पूर्व-बसव काल से ही मंगलवेढा का क्षेत्र वीरशैव मतप्रणाली से प्रभावित था। आज भी रेवणसिद्धेश्वर के सभी स्मारक मंदिरों के पुजारी वीरशैव हैं। रेवणसिद्ध, बसवेश्वर और रुद्रमुनि वीरशैव जैसे प्रमुख वीरशैव संतों का मंगलवेढा क्षेत्र से करीबी रिश्ता ध्यान में रखते हुए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि संत बसवेश्वर ने इसी क्षेत्र में अपनी नवसमाज ...ति की नींव रखी थी। इस संदर्भ में महाराष्ट्र के मशहूर सांस्कृतिक इतिहासकार डॉ. रा. चिं. ढेरे का बयान बहुत महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय है। उनके अनुसार- "कैलास का राणा और बैकुंठ का राणा दोनों ने ही एक ही समय और एक ही भूमि में अपने-अपने भक्तों को भक्ति की प्रेरणा, समता की दीक्षा और करुणा का महत्व बताया था''।[11]

वीरशैवों का महाराष्ट्र के धर्म संप्रदायों पर प्रभाव: भारत के विभिन्न प्रदेशों मे उदित हुए धर्म संप्रदायों ने भाषा और प्रदेश के बंधन तोड़कर भारत की सांस्कृतिक एकता बहुत बड़ा योगदान दिया है। इन संप्रदायों के परस्पर संपर्क ने संबंधित क्षेत्र की भाषा, साहित्य और संस्कृति पर प्रभाव पड़ा। 12वीं शताब्दी ...से वीरशैव संप्रदाय का ऐसा ही प्रभाव महाराष्ट्र के सीमावर्ती क्षेत्रों में देखा गया है। इस अवधि के दौरान महाराष्ट्र में मौजूद नाथ, महानुभाव, वारकरी, ...नाथ आदि संप्रदायों पर वीरशैव का प्रभाव निश्चित रूप से दिखाई देता है। महाराष्ट्र में संत साहित्य के प्रख्यात विद्वान डॉ. यू. म पठान के अनुसार- "महाराष्ट्र में महानुभाव, नागेश और वारकरी संप्रदाय, चतुर्वर्ण्य जैसी प्रतिगामी व्यवस्था के संबंध में वीरशैव संप्रदाय के विरोध की जो भूमिका थी, उससे ...चित थे।"

वीरशैव संप्रदाय के पहले ही नाथ संप्रदाय का महाराष्ट्र में प्रसार हुआ था। नाथ और वीरशैव दोनों की उदय की पृष्ठभूमि एक ही थी। ये दोनों संप्रदाय ...पत नामक भारत-व्यापी शैव संप्रदाय से उत्पन्न हुए हैं। वीरशैव संप्रदाय के प्रवर्तक संत बसवेश्वर के पिता मदीराज पाशुपत संप्रदाय के अनुयायी थे, इसलिए बसवेश्वर को अपने परिवार से ही शिवभक्ति की विरासत मिली थी। बसवेश्वर के समकालीन, प्रसिद्ध वीरशैव संत सिद्धरामेश्वर लकुलीश पाशुपत संप्रदाय के अनुयायी होने की संभावना डॉ. एम. चिदानंद मूर्ति द्वारा व्यक्त की गई है। नाथ और वीरशैव संप्रदायों के उदय के बाद, पाशुपत और उनके कालामुख आदि संप्रदाय इन नए संप्रदायों में विलीन हो गए। कर्नाटक और महाराष्ट्र में पाशुपत संप्रदाय के कई मठों पर वीरशैवों ने कब्जा किया और उनकी मठवासी ...को अपनी गुरु परंपरा के रूप में स्वीकार किया। डॉ. नंदीमठ और वीरशैवों के अन्य विद्वानों ने इसका विस्तृत विवेचन किया है।[12] कहा जाता है कि वीरशैव और नाथ दोनों संप्रदायों की पृष्ठभूमि पाशुपत संप्रदाय ने समग्र रूप से बनाई थी। वीरशैव संप्रदाय के उपदेशक अल्लमप्रभु और नाथ संप्रदाय के ...नाथ दोनों समकालीन थे, इतना ही नहीं बल्कि नवनाथों की सिद्ध नामावली में वीरशैव आचार्य रेवणसिद्ध और मरुलसिद्ध के नाम मिलते हैं। 'शून्यसंपादन'

दृष्टिकोण

[illegible] है। [illegible] वीरशैव [illegible] में भी [illegible] वीरशैव सम्प्रदाय [illegible] को [illegible] प्राप्त हुआ था।

महाराष्ट्र के बहुचर्चित महानुभाव सम्प्रदाय पर भी वीरशैव सम्प्रदाय का प्रभाव देखा जा सकता है। चक्रधरस्वामी [illegible] सम्प्रदाय प्रसार के लिए वीरशैव आन्दोलन से प्रेरित थे। इतना ही नहीं, महानुभाव सम्प्रदाय की स्थापना के पूर्व चक्रधरस्वामी स्वयं वीरशैव [illegible] साधना की थी जो वीरशैवों प्रिय था। वीरशैव और महानुभाव दोनों सम्प्रदायों ने समकालीन वैदिक धर्म की प्रथाओं और मूर्ति पूजा का विरोध किया। [illegible] सम्प्रदाय जातिप्रथा और ऊंच नीच भेदभाव के खिलाफ थे इसलिए समाज के सभी वर्ग के पुरुष और महिलाएं दोनों सम्प्रदायों की दीक्षा ले सकते थे। महानुभाव सम्प्रदाय की महात्मा, दासोह, स्थल, समान, अनुभव आदि कई अवधारणाएँ वीरशैव साहित्य में दिखाई देती हैं। इन दोनों सम्प्रदायों में एक [illegible] महत्वपूर्ण है, इसलिए इन्हें एकमार्गी सम्प्रदाय कहा जाता है। सबसे महत्वपूर्ण कड़ी यह है कि वीरशैव की तरह महानुभाव की गुरु परंपरा भी नाथ सम्प्रदाय से आयी थी, इसलिए इन दोनों सम्प्रदायों को उनकी प्रवर्तन की प्रेरणा नाथ दर्शन से ही मिली थी। रामचन्द्रदेव यादव के कल्लेदेवरपुर अभिलेख में [illegible] और गद्यपद्यीय शब्दावली का उल्लेख मिलता है। संत बसवेश्वर के साथ ही चक्रधर स्वामी का 'वागदीलानार्थ चक्रधर' ऐसा उल्लेख इस संदर्भ में [illegible] जाता है।[8]

महाराष्ट्र में सबसे प्रभावशाली और लोकप्रिय वारकरी सम्प्रदाय भी कुछ हद तक वीरशैव सम्प्रदाय से प्रभावित है। दूसरी ओर, वीरशैवों के वारकरी सम्प्रदाय के आचरण से प्रभावित होने के कई उदाहरण हैं। वारकरी सम्प्रदाय की नींव रखने वाले संत ज्ञानेश्वर के लिए गुरुस्थान के [illegible] नाथ और वीरशैव दोनों ही शैव सम्प्रदाय से हैं। कई प्रमाणों से नाथ सम्प्रदाय ही वीरशैव और वारकरी के बीच की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। वीरशैव अनुयायियों का 'प्रभु श्रीशैल मल्लिकार्जुन' देवता का वर्णन वारकरी सम्प्रदाय के संत नामदेव के अभंग में मिलता है। वारकरी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध संत तुकाराम और वीरशैव सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत बसवेश्वर के विचारों और भक्ति कार्यों में एक बड़ी समानता है। वीरशैव सम्प्रदाय के विद्वान पंडित आवळीकर लिखते हैं कि "(The common link between them (Basaveswara and Tukarama) is Bhakti. They were two great advocates of Bhakti. That is why they are called Bhakti Bhandari and Bhakti Siromani respectively)" जिस तरह से वीरशैव ने वारकरी सम्प्रदाय को प्रभावित किया है और साथ ही वारकरी सम्प्रदाय ने भी वीरशैवों पर अपनी छाप छोड़ी है। संत मन्मथस्वामी और उनके पश्चात शांतलिंग, बसवलिंग, लिंगेश्वर, शिवदास आदि वीरशैव संतों ने वारकरी संतों के द्वारा रचित साहित्य का अनुकरण किया। इतना ही नहीं कई मराठी वीरशैव संत वारकरी सम्प्रदाय की ओर आकर्षित हुए। संक्षेप में, वीरशैव और वारकरी सम्प्रदायों के आपसी समन्वय ने महाराष्ट्र में समतावादी विचारों के प्रसार में अहम भूमिका निभाई।

महाराष्ट्र के [illegible] में नागेश सम्प्रदाय पर वीरशैव का सबसे अधिक प्रभाव है। 16 वीं शताब्दी ईस्वी में सोलापुर जिले के वडवल में हुए [illegible] नागनाथ नाम के सिद्ध पुरुष इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे। वीरशैवों की तरह नागेश सम्प्रदाय में भी शिव पूजा और लिंग पूजा प्रचलित है। साथ ही नागेश सम्प्रदाय ने भी समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को अस्वीकार किया। वीरशैव सम्प्रदाय में जिस प्रकार विभिन्न जातियों, जनजातियों, शूद्रों और महिलाओं को स्थान मिला, उसी तरह नागेश सम्प्रदाय में ब्राह्मण, तेली, धनगर, मुसलमान, महार, चमार और महिलाओं को भी साधना करने का अधिकार मिला। संक्षेप में, नागेश सम्प्रदाय का आचार और दर्शन वीरशैव की मानवतावादी और समन्वयवादी सोच से गहराई से प्रभावित प्रतीत होता है।

इस प्रकार बारहवीं शताब्दी से महाराष्ट्र में वीरशैव पंथ का प्रसार हुआ। मराठी समाज और संस्कृति पर इसका काफी प्रभाव [illegible] महाराष्ट्र में वीरशैव सम्प्रदाय के फैलाव में सोन्नलिगे (आधुनिक सोलापुर) में स्थित सिद्धरामेश्वर, अमुगेश्वर और महाराष्ट्र कर्नाटक के सीमावर्ती क्षेत्र के [illegible] रायम्मा, मंचन्न, मडिवाळ माचय्या, उरिलिंगदेव, उरिलिंगपेद्दि, शंकर दासिमय्या, कोल्लय्या आदि शिवशरणों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। [illegible] महाराष्ट्र के सोलापुर, सांगली, कोल्हापुर, मराठवाड़ा के उस्मानाबाद, लातूर और नांदेड़ जिलों में वीरशैव सम्प्रदाय के अनुयायियों की [illegible] है। इसमें सोलापुर वीरशैव अनुयायियों का सबसे बड़ा केंद्र है।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. महाराष्ट्र स्टेट गैझेटियर्स, बुलढाणा डिस्ट्रिक्ट, गैझेटियर्स डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ महाराष्ट्र [illegible]
2. [illegible] डॉ. [illegible] वीरशैव [illegible] मराठी [illegible]
3. भुसारी आर. एम., साहित्य आणि समाजधर्म, मराठी [illegible] पृष्ठ संख्या [illegible]
4. [illegible] पृष्ठ संख्या [illegible]
5. भुसारी आर. एम., पूर्वोक्त, पृष्ठ संख्या [illegible]
6. चक्रवर्ती [illegible] पृष्ठ संख्या [illegible]
7. देसाई पी. बी., [illegible]
8. [illegible]

९. विदानंद मूर्ति एम., श्री. बसवेश्वरा, नॅशनल बुक ट्रस्ट, न्यू दिल्ली, 1991, पृष्ठ संख्या., 27
10. जोशी म.रा., नाथ संप्रदाय, (मराठी), व्हीनस प्रकाशन, पुणे, 1980, पृष्ठ संख्या., 101
11. ढेरे रा. चिं., चक्रपाणि, (मराठी), विश्वकर्मा साहित्यालय, पुणे, 1977, पृष्ठ संख्या., 97
12. नंदीमठ एस. सी.,ए हैण्डबुक ऑफ वीरशैविझम, बेसल मिशन प्रेस, मैंगलोर, 1941, पृष्ठ संख्या., 9-10
13. जोशी शं. भा.,मरहाटी संस्कृति-काही समस्या (मराठी),व्हीनस प्रकाशन, पुणे, 1958, पृष्ठ संख्या., 146
14. भुसारी आर.एम., पुर्वोक्त, पृष्ठ संख्या., 85-86
15. पानसे मु. ग., यादवकालीन महाराष्ट्र, (मराठी) पृष्ठ संख्या. 139
16. कुंभार आनंद, संशोधन तरंग (मराठी) नवभारत प्रकाशन संस्था, मुंबई,1988, पृ. 141-142
17. मंचरकर र. बा. (संपा.), वीरशैव संप्रदाय, डॉ. वा.ग. तथा बाबासाहेब कल्याणकर गौरव ग्रंथ, (मराठी), श्रीरामपुर , 1989 पृष्ठ संख्या. 151
18. ढेरे रा. चिं.,शिखर शिगणापुरचा श्रीशंभू महादेव,(मराठी), श्रीविद्या प्रकाशन,पुणे,2001,पृष्ठ संख्या.,150
19. वोडियार एस. एस. (संपा), पुर्वोक्त, पृष्ठ संख्या. 244
20. जोशी म.रा., पुर्वोक्त, पृष्ठ संख्या. 98

GOVT. OF INDIA- RNI NO. UPBIL/2014/56766
UGC Approved Care Listed Journal
ISSN 2348-2397

WWS

Shodh Sarita

An International Multidisciplinary Quarterly
Bilingual Peer Reviewed Refereed Research Journal

• Vol. 7 • Issue 28 • October to December 2020

Editor in Chief
Dr. Vinay Kumar Sharma
D. Litt. - Gold Medalist

sanchar
Educational & Research Foundation

17	A STUDY OF MENTAL HEALTH IN RELATION TO PERSONALITY, SELF ESTEEM, LOCUS OF CONTROL AND RESILIENCE OF CIVIL SERVICES ASPIRANTS	Jyoti Amit Kumar	80
18	A COMPARATIVE STUDY OF EMOTIONAL INTELLIGENCE AND PSYCHOLOGICAL WELL BEING AMONG WORKING AND NON WORKING MARRIED WOMEN	Amit Kumar Rahmat Kaur Kochar	85
19	DOMESTIC VIOLENCE AGAINST WOMEN IN INDIA - THE DARK TRUTH OF OUR SOCIETY	Dr. Akhileshwar Rai	90
20	WOMEN'S DILEMMAS IN THE SELECTED POEMS OF SYLVIA PLATH AND MEENA KAMAL	Dr. Javed K. Shah	95
21	INCORPORATING COVID-19 MEASURES AS CSR PRACTICE - A CASE STUDY OF STATE BANK OF INDIA	Pratiksha Mishra Dr. Taruna	98
22	A STUDY OF THE SUBJECTIVE WELL-BEING AND LEVEL OF STRESS AMONG THE PARENTS OF INTELLECTUAL DISABILITY AND NORMAL CHILDREN	Dr. Ajit B. Chandanshive	102
23	SIDDHARAMESHWAR - AN INFLUENTIAL SHIVASHARANA IN THE VEERASHAIVA MOVEMENT	Dr. Ambadas Ket	107
24	UPHOLDING THE HEALTH AND CULTURE DURING THE PANDEMIC - A STUDY ON THE SIGNIFICANCE OF TRADITIONAL AND INDIGENOUS GAMES	Dr. Jayakumar. K. Dr. Lekha Pillai	113
25	ROMANTIC POETS - VOICING THE ENVIRONMENTAL ISSUES	Dr. Rajiv Kumar	118
26	A STUDY ON DIFFICULTIES FACED BY RURAL WOMEN ENTREPRENEURS IN INDIA	Dr. Ramesh Chandrahasa Dr. Kiran Kumar	123
27	REGISTRABILITY OF SOUND AS TRADEMARK IN CURRENT SCENARIO	Mani Pratap Singh	126
28	A COMPARATIVE STUDY OF SUBJECTIVE WELL-BEING IN OLD AGED PEOPLE IN RELATION TO THEIR SOCIO- ECONOMIC STATUS	Dr. Sapna Singh	131
29	A STUDY OF THE INTEREST OF SOCIAL CAUSE MESSAGES ON TELEVISION COMMERCIAL - WITH AND WITHOUT CELEBRITIES ENDORSEMENT	Dr. Ajay Kumar	136
30	ASSESSMENT OF OCCUPATIONAL CHALLENGES AMONG CRPF PERSONNEL	Nidhi Singh Dr. Suman Audichya	140

Siddharameshwar : A Brief Biography

Siddharameshwar was a Veerashaiva Shivasharana who was contemporary of Saint Basavesvara. He attained the title of Karmayogi on the strength of selfless social service. Siddharameshwar with the power in Yoga also became a great Shivayogi. Due to the diverse characteristics of his historical figure, the study of his life and work is important in the cultural history of medieval Maharashtra as well as South India.

The Siddharama Charite or Siddharama Purana, a Kannada treatise written by Raghavanka a Hampi-based disciple of Harihar, a Kannada poet of the 12th century A.D. is the only contemporary source of the life of Siddharameshwar.

The Vachanas or verses of Siddarameshwara are available and these are also an important source for the study of his life and work. Apart from literary sources, near about 35 inscriptions belong to the 13 th century, which are found in Bijapur, Gulbarga, Dharwad, Shimoga or Shivamogga, Mandya, Chitradurga districts in Karnataka and also in the district of Maharashtra like Solapur, Osmanabad etc. attested the work of Siddharameshwar.

Although, it is true that Siddharameshwar was a contemporary of Basavesvara, Allama Prabhu and other prominent Shivasharana, like other religious and political leaders of the Medieval period, historians have different views on his life time.

Dr. Nandimath assumes that the period of Siddharameshwar was around 1160 A.D. while Dr. Bhandarkar has given 1127 A.D to 1167 A.D as the period of Siddarameshwara. Siddharama Shivayogi the book of Dr. M.B. Kottrashetty published by Dharwad University states that 1130 to 1180 A.D was the period of Siddharameshwar. According to Mr. Anand Kumbhar, who put his views on the basis of Ingalgi inscription (Gulbarga District), Siddharameshwar must have been buried before 1209. The Marathi and English texts published in Solapur on the basis of Ragavanka's work, claims 1088 to 1189 A.D was the period of Siddarameshwara. The eminent scholars in Maharashtra like Dr. Ramachandra Dhere, Gonvid Pat, accepted the same period given by Dr. Kottrashetty. In general, 1130 to 1180 is considered to be the life period of Siddarameshwara.

Siddharameshwar was born at Sonnalige, (Modern Solapur, Maharashtra) in the Kudavakkalinga Kunbi family. Mordi Mudaagowda was the chief or gauda of the Nadu (A administrative unit) his father and Suggaladevi was his mother.[1] According to tradition Siddharameshwar was born with the blessings and propheecy of the famous Veerashaiva Acharya Revansiddha. Mordi Mudaagowda named the new born child as Dhuli Mahankala after the name of his family deity. later on he became well known as Siddharama when he followed Nathasiddha tradition. However, from the inscriptions, his names are found as Ramayya, Ramnatha, Ramnathdev, Siddhanath, Siddharamnath, Siddharam, Siddharameshwar, Shivayogi Siddharam etc. even today the name Siddharameshwar is prevalent among the locals.

Siddharameshwar was the supreme devotee of Mallikarjuna at Srisaila. In his early days, he was a cowherd and a native devotee. He went Srisaila and obtained vision of Mallikarjuna. In order to gain constant proximity to Mallikarjuna, he established the temple of Srisaila Mallikarjuna in Sonnalige. That is why Sonnalige or modern Solapur is mentioned in the inscriptions as new Srisaila or Kailaspur.[2] Siddarameshwara, on the orders of Mallikarjuna, created 68 lingas and 17 Shivalayas or temples of Lord Shiva at Sonnalige. Siddharameshwar himself has said in one of his verses that he has established 68 lingas and other Shivalayas.

Due to this religious work of Siddarameshwara, Sonnalige got the place of pilgrimage as it is mentioned in the inscriptions as 'Southern Varanasi'.[3] Apart from this, he also built lakes, monasteries and Annachhatra or food huts. While Siddarameshwara and his followers engaged in social work, Allama Prabhu, one of the patrons Shivsharana of the Veerashaiva sect visited Sonnalige. During this visit, Allama prabhu advised Siddharameshwar to come to Kaylan and take initiation of Ishtlinga.[4] Similarly, Siddharameshwar went to Kaylan (Now Basvakalyan, the capital of later Chalukays) and took Istlinga initiation from Channabasveshwar.[5] This historic event mentioned by Dr. R.C. Hiremath, a